☆ पत्रकार पी०डी० टंडन और 'मानव नेहरू'

दया प्रकाश सिन्हा

आई. ए. एस. (सेवानिवृत्त)

इलाहाबाद के प्रसिद्ध पत्रकार पी०डी० टंडन मेरे वरिष्ठ मित्र थे। वरिष्ठ इसलिए क्योंकि वह मुझसे आयु में बड़े थे, और मित्र इसलिए क्योंकि उन्होंने मुझसे सदा मित्रवत व्यवहार किया था।

आज़ादी के पहले गांधी जी का चारों ओर बोल–बाला था। लेकिन इलाहाबाद के इष्ट–देवता तो जवाहरलाल नेहरू ही थे। नेहरू परिवार का राजसी महल जैसा आनन्द भवन, मोतीलाल नेहरू की शाही–अय्याशी की कहानियां, और जवाहरलाल नेहरू और उनकी बहनों के गोरे–दमकते चेहरे–इन सबके कारण इलाहााबाद में अगर कुछ भी संगम के बाद महत्वपूर्ण था, तो वह नेहरू परिवार था। जिस श्रद्धा से धार्मिक लोग नित्य स्नान के लिए संगम जाते हैं, वैसी ही श्रद्धा से कांग्रेसी नवयुवक आनन्द भवन जाते थे।

नेहरू परिवार की श्रद्धा से खिंचकर आनन्द भवन जाने वाले नवयुवकों में एक पी०डी० टंडन भी थे। पी०डी० टंडन पढ़ाई के साथ–साथ पत्रकारिता भी करते थे। इसलिए वे आनन्द भवन के अपने अनुभवों के कदाचित् नोट्स भी लेते थे। इंदिरा गांधी उस समय दस–ग्यारह साल की बालिका थीं। हमारे टंडन जी ने उनको साइकिल चलाना सिखाया था। इंदिरा गांधी को साइकिल सिखाते टंडन जी के फोटो को भी देखने का मुझे अवसर मिला था, जब स्वयं टंडन जी ने मुझे आनन्द भवन के 'उन दिनों' के बारे में बताया था। किसी बात पर टंडन जी की नेहरू जी से नोंक–झोंक हो गई। टंडन जी नहीं झुके। बाहर घास में मैदान में बैठे रहे, लेकिन नेहरू जी से बात नहीं की। इस पर नेहरू जी ने स्वयं उनके पास आकर मनाया। शायद ऐसा ही कुछ टंडन जी ने आज से तीस–चालीस वर्ष पूर्व मुझे बताया था। नेहरू जी के इस व्यवहार से वह बहुत प्रसन्न हुए थे। इस घटना के माध्यम से उन्होंने नेहरू जी के व्यक्तित्व में निहित मानवीय पक्ष का साक्षात्कार किया था। और उन्होंने एक पुस्तक लिखी –

''द ह्यूमन नेहरू'', अर्थात् ''मानव नेहरू''। इसमें उन्होंने ऐसी अनेक घटनाओं का उल्लेख किया जो नेहरू जी के मानवीय पक्ष को उजागर करती हैं।

यह बात सन् अड़सठ–उनहत्तर की है। नेहरू जी की मृत्यु हो चुकी थी। इंदिरा जी प्रधान मंत्री पद पर थीं। उन्होंने ''ग़रीबी हटाओ'' का नारा दिया था। राजा–महाराजाओं के प्रीवी–पर्स समाप्त करने जा रहीं थीं। बैंकों के राष्ट्रीयकरण से भारत में संपन्नता के सपने दिखा रहीं थीं। निम्नवर्ग के साथ उन्होंने पढ़े–लिखे मध्यम वर्ग को भी जीत लिया था। इसी वातावरण में एक दिन मैंने टंडन जी से कहा– ''इंदिरा गांधी ने तो नेहरू जी से भी बाज़ी मार ली।' तो वह बोले– ''नेहरू जी से चालाकी में इंदिरा बाज़ी मार सकती हैं, मक्कारी और फ़रेब में बाजी मार सकती है, लेकिन नेहरू जी से विशाल हृदयता और बड़प्पन में बाज़ी नहीं मार सकतीं।'' ऐसी थी उनकी भक्ति, नेहरू जी के प्रति।

अवकाश–प्राप्ति के पश्चात् मुझे टंडन जी के 'नायक' नेहरू जी के बारे में विधिवत् उपलब्ध साहित्य पढ़ने का अवसर मिला। इनको पढ़ने से नेहरू जी को जो छवि उभरकर आई, वह टंडन जी के 'इष्ट–देव' की छवि के नितान्त विपरीत है।

जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभभाई पटेल के आपसी मतभेद और प्रतिद्वन्दिता सबको ज्ञात है। जब 1946 में कांग्रेस के नए अध्यक्ष का चुनाव होना था, तो बहुमत से प्रान्तीय कांग्रेस कार्यसमितियों ने सरदार पटेल का नाम प्रस्तावित किया था। एक दो ने राजेन्द्र बाबू का नाम भेजा था। नेहरू जी का नाम किसी ने भी प्रस्तावित नहीं किया था, फिर भी गांधी जी के हस्तक्षेप से जवाहरलाल को कांग्रेस का अध्यक्ष बनाया गया। जवाहरलाल के मोह में गांधी जी ने प्रजातान्त्रिक मूल्यों को तिलांजलि देकर, पटेल के साथ घोर अन्याय किया था। यह पटेल का बड़प्पन था कि उन्होंने गांधी जी के इस पक्षपात को चुप रहकर स्वीकार कर लिया। इसी प्रकार गांधी जी के कारण ही, पटेल को कोहनी मारकर नेहरू जी अगस्त 1946 में 'अन्तरिम सरकार' में प्रधानमंत्री बन सके।

इसके पहले सन् उन्तीस सौ चौबीस में भी गांधी जी ने अनेक योग्य और वरिष्ठ नेताओं की उपेक्षा करके नेहरूजी को कांग्रेस का महासचिव बनाया था। इसके बाद सन् 1929 में भी,

जब कि बहुमत से प्रान्तीय कांग्रेस कार्यसमितियों ने पटेल को लाहौर कांग्रेस के लिए अध्यक्ष पद के लिए प्रस्तावित किया था, गांधी जी ने बहुमत को नकारकर जवाहरलाल को कांग्रेस का अध्यक्ष बनवाया था। उन्नीस सौ छत्तीस में भी जवाहरलाल नेहरू को कांग्रेस अध्यक्ष पद गांधी जी की कृपा से ही मिला था। इस बार फिर प्रान्तीय कांग्रेस समितियों ने सरदार पटेल का नाम भारी बहुमत से अध्यक्ष पद हेतु प्रस्तावित किया था। किन्तु गांधी जी का प्रजातंत्र में कभी भी विश्वास नहीं था। अतएव उन्होंने इस बार भी प्रजातांत्रिक निर्णय की अवहेलना करके सरदार पटेल को अपना नाम वापिस लेने के लिए मनाया। और सरदार पटेल ने अपना नाम वापस ले लिया। सन् 1946 में जब 'अन्तरिम सरकार' में प्रधानमंत्री बनने का अवसर आया, तब कांग्रेस कार्य–समिति के अधिकांश सदस्य पटेल को प्रधानमंत्री बनाना चाहते थे। वे जानते थे कि सरदार पटेल ***''लौह पुरुष है जिनके पैर धरती पर दृढ़ता से जमें है। वह जिन्ना से और अधिक कुशलता से निबट सकेंगे, और इस मामले में कितनी ही देर क्यों न हो गई हो, वह अब भी देश की अखंडता और स्थिरता सुनिश्चित कर सकंगे। आगे आने वाला समय बहुत संकटपूर्ण है, और सरदार पटेल की दृढ़ व्यवहारिकता ऐसे समय में सुरक्षा ढाल सिद्ध होगी।'' (दुर्गादास : इंडिया फ्रोम कर्जन टु नेहरू एण्ड आफ्टर, पृष्ठ 240)*** इसके बावजूद गांधी जी ने जवाहर लाल को प्रधानमंत्री पद के लिए चुना। जब लोगों ने गांधीजी से सरदार पटेल के प्रति किए गए अन्याय के लिए प्रश्न किए तो गांधी जी ने उत्तर दिया–''जवाहर दूसरा स्थान स्वीकार नहीं करेगा।'' इसका अर्थ यह हुआ कि अगर प्रजातांत्रिक निर्णय का अनुपालन करते हुए सरदार पटेल को प्रधानमंत्री बनाया गया, तो नेहरू जी इसे स्वीकार नहीं कर पायेंगे, और संभव है कि वह कांग्रेस पार्टी ही छोड़ दें। प्रकट होता है कि नेहरू जी में महत्वकांक्षा और पदलोलुपत इतनी प्रचंड थी कि वह इसके लिए प्रजातंत्र और स्वाभाविक मानवीय शीलता को भी त्यागने को तैयार थे। इसके विपरीत सरदार पटेल का व्यक्तित्व एक त्यागी तपस्वी का था, जिसमें पदलोलुपता नाम मात्र को भी नहीं थी। उन्होंने गांधी जी के साधारण से अनुरोध पर प्रधानमंत्री के पद के लिए अपना नाम हटा लिया। इस प्रसंग में नेहरू जी के चरित्र की जो झलक मिलती है, वह इतनी स्तुत्य नहीं है, जितनी पत्रकार टंडन ने अपनी पुस्तक से चित्रित की है।

भारत की स्वतंत्रता के पश्चात् यद्यपि नेहरू जी प्रधान मंत्री थे, और सरदार पटेल उनके अधीन गृहमंत्री, किन्तु कार्य–क्षमता में सरदार पटेल नेहरू से बहुत आगे सिद्ध हुए। देश के विभाजन के पश्चात् अंग्रेज 565 देशी राज्यों को भी स्वतंत्र कर गए थे। यह इन राज्यों पर था कि वे या तो स्वतंत्र बने रहें या फिर भारत और पाकिस्तान में से किसी एक में विलय हो जाएं। सरदार पटेल ने इन देशी राज्यों से वार्ता करके उनका भारत में विलय कर लिया। नेहरू जी ने केवल एक देशी राज्य, कश्मीर का मामला अपने हाथ ने लिया, वह उसको भी नहीं संभाल पाए। उसे उन्होंने इतना उलझा दिया कि भारत आज सन् 1947 से कश्मीर समस्या को भुगत रहा है।

इसी प्रकार नेहरू जी की चीनी–नीति भी असफल हुई। अपनी मृत्यु के केवल पांच हफ्ते पहले सरदार पटल ने अपने 7 नवम्बर 1950 के पत्र में नेहरू जी को उनकी चीनी–नीति पर प्रश्न–चिन्ह लगाते हुए लिखा था – ***"हालांकि हम अपने आपको चीनियों का मित्र समझते हैं किन्तु चीनी हमें अपना मित्र नहीं मानते। 'कम्युनिस्ट मानसिकता कि जो हमारे साथ नहीं है वह हमारा विरोधी है' – एक ऐसा महत्वपूर्ण संकेत है जिसे हम लोगों को समझना चाहिए।"*** तिब्बत में चीनियों के अचानक कब्जे के संदर्भ में भी सरदार पटेल ने उस पत्र में लिखा थाः– ***"चीनी सरकार ने अपने शान्तिपूर्ण इरादों की घोषणाओं के द्वारा हमको धोका देने का प्रयत्न किया है। सर्वाधिक दुख तो इस बात का है कि तिब्बत वालो ने हम पर विश्वास किया, हमसे परामर्श लिया और हम उनको चीनी कूटनीति और चीनी बदनियती के शिकंजे से बचा नहीं सके।"***

नेहरू जी में सरदार पटेल जैसी दूर–दर्शिता नहीं थी। वह सस्ती लोकप्रियता और शान्ति के पीछे दौड़ते रहे, और *'हिन्दी–चीनी : भाई–भाई'* का नाटक करते रहे। सरदार पटेल की दूरदर्शी चेतावनी और चीन की मक्कारी उनकी समझ में बारह बरस बाद आई, जब चीन ने भारत पर आक्रमण कर दिया।

सन् 1929 से 1946 तक सरदार पटेल बराबर ही नेहरू जी को अपनी लोकप्रियता, व्यवहारिकता और प्रशासनिक योग्यता में पराजित करते रहे। अतएव नेहरू जी को सरदार

फूटी आंख भी नहीं सुहाते थे। इसीलिए जब दिसम्बर 1950 में सरदार पटेल की मृत्यु हुई, तो नेहरू जी उनके अन्तिम संस्कार में बम्बई नहीं गए। उन्होंने राष्ट्रपति डा. राजेन्द्र प्रसाद को भी अन्तिम–संस्कार में जाने से मना किया :– ***"किसी मंत्री के दाह–संस्कार से केन्द्रीय सरकार के अध्यक्ष के जाने से आगे के लिए गलत परंपराएं पड़ने की आशंका है।"*** किन्तु राष्ट्रपति राजेन्द्र प्रसाद, प्रधानमंत्री के परामर्श की अवहेलना करके सरदार पटेल के दाह–संस्कार में उपस्थित होने बंबई गए। कहते हैं शत्रु की मृत्यु के साथ उसके प्रति शत्रुता की भी मृत्यु हो जाती है। किन्तु नेहरू जी के साथ ऐसा नहीं था। वे सरदार पटेल की मृत्यु के बाद भी उनसे शत्रुता भूल नहीं सके। ऐसे व्यक्ति में टंडन जी को कहां मानवता दिखाई पड़ गई ?

नेहरू जी के अतिरिक्त आचार्य कृपलानी से भी पत्रकार टंडन जी के संबंध बहुत आत्मीय थे। एक समय आया जब नेहरू जी और कृपलानी जी के संबंधों में दरार पड़ गई। कृपलानी जी ने कांग्रेस छोड़ दी और वह संसद में विरोधी पक्ष में जा बैठे। नेहरू जी उस समय प्रधानमंत्री थे। कोई दूसरा होता तो प्रधानमंत्री के शिविर में बने रहने के लिए उनके विरोधी कृपलानी से नाता तोड़ लेता। किन्तु पत्रकार टंडन जी से ऐसा नहीं हुआ। नेहरू जी की नाराज़गी का खतरा उठाते हुए भी उन्होंने कृपलानी जी के साथ अपने संबंध पूर्ववत बनाए रखे। उन्होंने मुझसे कहा :– ***"राजनीतिक मतभेदों के साथ व्यक्तिगत संबंधों में भेद नहीं आने चाहिए।"*** जब टंडन जी के इन विचारों को नेहरू जी के सरदार पटेल के प्रति किए व्यवहार के परिप्रेक्ष्य में देखता हूँ, तो लगता है कि स्वयं टंडन का व्यक्तित्व उनके आराध्य देव–नेहरू जी की तुलना में कितना ऊँचा था।

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, मई 1962 में बहुत गंभीर रूप से बीमार हो गए थे। ऐसा लगने लगा था कि वह बच नहीं सकेंगे। अतएव उनके दाह–संस्कार के लिए उपयुक्त स्थान पहले से ढूंढने और निश्चित करने का दायित्व तत्कालीन गृहमंत्री लाल बहादुर शास्त्री पर पड़ा। नेहरू जी ने उनको विश्वास में लेकर कहा–वह स्थान ***"राजघाट से जितना संभव हो सके, उतनी दूर हो।"*** मरने के बाद भी नेहरू जी अन्य नेताओं से आगे बने रहना चाहते थे, इसीलिए वह राजघाट के निकट अपनी समाधि के लिए स्थान सुरक्षित रखना चाहते थे। इस

मानसिकता के व्यक्ति में पी०डी० टंडन ने मानवीयता देखी, तो निस्संदेह स्वयं उनकी महानता है, जो दूसरों के दोष नहीं देखती।

और जब फरवरी 1963 में डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की मृत्यु पटना में हुई तो वह राष्ट्रपति नहीं थे। नेहरू जी डॉ० राजेन्द्र प्रसाद को बहुत पसन्द नहीं करते थे। नेहरू जी की इच्छा के विरुद्ध ही वह दो बार राष्ट्रपति बनाए गए थे। पूरे देश में उनके लिए जो सम्मान और लोकप्रियता थी, उसके आगे नेहरू जी को झुकना पड़ा था। किन्तु नेहरू जी इसके लिए उन्हें कभी क्षमा नहीं कर पाये ।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने नेहरू सरकार के अन्तर्गत व्याप्त भ्रष्टाचार की ओर इशारा करते हुए एक पत्र लिखा था। नेहरू जी को सरकार के काम में राष्ट्रपति यह का हस्तक्षेप अनावश्यक और शत्रुवत लगा था। इसलिए उन्होने अपने स्वभावगत चरित्र के अनुरूप डॉ० राजेन्द्र प्रसाद की मृत्यु के बाद उनसे बदला लेना उचित समझा। उन्होंने डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के अन्तिम संस्कार में पटना न जाने का फैसला लिया। उन्होंने तत्कालीन राष्ट्रपति डॉ० राधाकृष्णन से कहा– ***''मैं प्रधानमंत्री राहत–कोष के लिए धन एकत्रित करने राजस्थान जा रहा हूं, इसीलिए पटना नहीं जा सकूंगा। आपको भी वहां जाने की आवश्यकता नहीं है।''*** किन्तु डॉ० राधाकृष्णन ने उनकी सलाह न मानते हुए उनसे कहा– ***''मैं तो अन्तिम संस्कार में भाग लेने पटना जा रहा हूं। पूर्व राष्ट्रपति को इतना तो देय है। आप भी मेरे साथ पटना चलिए।''*** डॉ० राधाकृष्पान को अकेले ही पटना जाना पड़ा। नेहरू जी को पटना नहीं जाना था, और वह नहीं गए।

जवाहर जाल नेहरू की शत्रुता प्रतिद्वन्दी की मौत के बाद भी चलती थी। जो अपनी पाशविक प्रतिहिंसा से प्रेरित होकर मृतक से बदल ले, वह किस प्रकार मानवीयता का दावेदार हो सकता है ?

पत्रकार पी०डी० टंडन जी के नामारासी कॉंग्रेस अध्यक्ष पुरुषोत्तम दास टंडन के साथ उनके **'इष्ट देवता'** नेहरू जी ने जैसा व्यवहार किया, वह भी उल्लेखनीय है। यह सर्वविदित है कि माउंटबैटेन ने देश के विभाजन की योजना पर सबसे पहले अनौपचारिक सहमति नेहरू

जी से ही ली थी। इसके बाद ही यह योजना उन्होंने अन्य कांग्रेसी नेताओं के सन्मुख रखी थी। नेहरू जी को इस विभाजन को स्वीकार करने की जल्दी थी, क्योकि उन्हें प्रधानमंत्री की कुर्सी दिखाई पड़ रही थी। नेहरू जी तथा अन्य कांग्रेसी नेताओं ने देश का विभाजन इसीलिए स्वीकार किया क्योंकि वह बूढ़े हो रहे थे, आगे संघर्ष का हौसला उनमें नहीं बचा था और वह इसी जीवन में कुंर्सी पाने के लिए तड़प रहे थे। ऐसे पदलोलुप नेताओं को एक आशंका थी–अगर अखिल भारतीय कांग्रेस समिति ने देश–विभाजन की योजना अस्वीकार कर दी, तो आती हुई कुर्सी हाथ से निकल जाएगी। अतएव 14 जून 1947 की अखिल भारतीय कांग्रेस समिति की बैठक में वे सब गांधी जी को विशेष अनुनय करके लाए। जैसी अपेक्षा थी, कांग्रेस समिति के अधिकांश सदस्य विभाजन के विरोध में थे। अनेक लोगों ने विभाजन–योजना को अस्वीकार करने का आग्रह किया। इनमें सबसे अधिक बढ़–चढ़कर पुरुषोत्तम दास टंडन बोले। उन्होंने कहा कि वे किसी भी हालत में विभाजन स्वीकार नहीं करेंगे। वे अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखेंगे। अगर गांधी जी ने हस्तक्षेप करके कांग्रेस समिति के सदस्यों को विभाजन स्वीकार करने के लिए विवश न कर दिया होता, तो विभाजन स्वीकार नहीं होता, और सन् 1947 में नेहरू जी को प्रधानमंत्री की गद्दी न मिलती।

नेहरू जी, विभाजन–योजना के विरोध के लिए, पुरुषोत्तम दास टंडन को कभी क्षमा नहीं कर सके। और जब पुरुषोत्तम दास टंडन सन् 1950 में कृपलानी को परास्त कर बहुमत से कांग्रेस अध्यक्ष चुने गए, तो नेहरू जी ने कांग्रेस कार्यसमिति से त्यागपत्र दे दिया। इससे कांग्रेस में खलबली मच गई। ऐसा लगने लगा कि प्रधानमंत्री और पार्टी अध्यक्ष की लड़ाई में कांग्रेस टूट कर दो दलों में विभाजित हो जायेगी। पार्टी विभाजन और गुटबन्दी को रोकने के लिए पहले राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन ने की, नेहरू ने नहीं। टंडन जी ने विवश होकर अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। इस तरह नेहरू जी ने टंडन जी को विभाजन के विरोध के लिए दंडित किया।

मुझे याद आ रहा है कि पत्रकार टंडन, जयप्रकाश नारायण के भी निकट थे। और उस समय, सन् 1974–75 में जब इंदिरा जी के विरूद्ध जे.पी. आन्दोलन अपने चरम पर था, टंडन जी बहुगुना सरकार में उत्तर प्रदेश में मंत्री थे। उन्हीं दिनों जयप्रकाश जी इलाहाबाद आए।

टंडन जी के सामने समस्या थी कि क्या सदा की तरह जयप्रकाश जी को अपने घर पर ठहरायें और इंदिरा जी के कोप–भाजन बनें ? या कि बहाना बनाकर जयप्रकाश जी को अपने यहां ठहरने से रोकें ? टंडन जी ने सोचा मंत्रीपद रहे या न रहे, व्यक्तिगत संबंध राजनैतिक पक्षधरता से ऊपर हैं। और उन्होंने सदा की तरह जयप्रकाश जी से अनुरोध करके उन्हें अपने घर पर ठहराया।

व्यक्तिगत संबंधों के सम्मान में, और मानवीय गुणों और शील में पत्रकार पी.डी. टंडन की, उनके अपने 'आराध्यदेव' नेहरू जी से तुलना नहीं हो सकती थी। यह एक ऐसा दुर्लभ संयोग था, जहाँ 'भक्त' अपने 'भगवान' से बड़ा था।

बी–255, सेक्टर–26,

नोएडा–201301

दूरभाष : 9891510230

dpsinha50@hotmail.com